पीपुल्स यूनियन फ़ॉर डेमोक्रेटिक राइट्स

न्यूज़लेटर

खण्ड 2 अंक 3
दिसम्बर 2022

यह न्यूजलेटर संगठन द्वारा किए जा रहे काम तथा नागरिक स्वतंत्रता एवं लोकतांत्रिक अधिकारों के मुद्दों में रुचि रखने वालों को उन कुछ मुद्दों से अवगत कराने वाली पीयूडीआर की एक पहल का हिस्सा है। मुद्दों और संगठन के काम का अधिक व्यापक विवरण https://www.pudr.org/ पर पाया जा सकता है।

न्यूज़लेटर की सदस्यता लेने के लिए, कृपया इस पर ईमेल भेजें: publications@pudr.org

विषय सूची

क़ैद और माफ़ी
आफ़स्पा
भीमा कोरेगांव, एनआईए और यूएपीए

क़ैद और माफ़ी

बिलकिस बानो मामले में हत्या और बलात्कार के अपराध के लिए उम्रक़ैद की सजा काट रहे 11 लोगों की 15 अगस्त को रिहाई ने क़ैद और माफ़ी के मक़सद को लेकर गंभीर सवाल उठाए हैं। क्या वर्तमान प्रणाली उन मक़सदों को पूरा करती है, जिसके लिए इसे डिजाइन किया गया था? क्या यह कानून और आपराधिक न्याय प्रणाली के सुधार और पुनर्वास के लक्ष्यों के समक्ष समानता को सुनिश्चित करता है? इन सवालों को उन मामलों में भी सामने लाया गया है, जहाँ माफ़ी से इंकार कर दिया गया है – जैसे कि बारा नरसंहार मामले में अभियुक्तों की लगातार कैद, या पेचीदा कानूनी प्रक्रियाओं में फंसे रहने और माफ़ी से मना किये जाने के बाद राजीव गाँधी हत्याकांड में इस साल की शुरुआत में पेरारिवलन और बाद में अन्य अभियुक्तों की रिहाई किस आधार पर कुछ को माफ़ी और रिहाई दी जाती है और अन्यों को इससे वंचित रखा जाता है? क्या इन फैसलों पर पहुँचने की कोई न्यायसंगत प्रक्रिया है? इन तीन मामलों पर एक संक्षिप्त नज़र यह दिखाती है कि माफ़ी के लिए किस प्रकार के सिस्टम, प्रक्रियाएँ और दिशानिर्देश मौजूद हैं, और, इनका वास्तविक कार्यान्वयन कैसे होता है?

एक तरफ जहाँ न्यायपालिका द्वारा 'रेयरेस्ट ऑफ़ रेयर' (विरलतम) मामलों में मौत की सजा देना बरक़रार है (सबसे ताज़ातरीन, मोहम्मद आरिफ के मामले में जहाँ आतंक के आरोप का इस्तेमाल मौत की सजा को बरकरार रखने के औचित्य से किया गया – देखें बॉक्स)। वहीं दूसरी तरफ, कुछ अरसे से अदालतों ने मौत की सजा के विकल्प के रूप में लंबी उम्रक़ैद को देखना शुरू किया है। आईपीसी यह स्पष्ट नहीं करती कि आजीवन कारावास का क्या मतलब है। सजायाफ़्ता व्यक्ति को आजीवन कारावास के लिए जेल में बिताने के लिए न्यूनतम वर्षों की आवश्यकता होती है। सीआरपीसी केंद्र और राज्य सरकारों को सजा निलंबित करने या हटाने की शक्ति देती है। दोषमुक्ति की शक्ति उन मामलों में 14 साल की न्यूनतम सजा काटने वाले दोषी पर आधारित है, जहाँ दोषसिद्धि एक ऐसे अपराध के लिए है जिसके लिए अधिकतम सजा मौत है। इसने 14 साल की मानक अवधि को 'उम्रक़ैद' के रूप में मानने की प्रथा को जन्म दिया था, जिसके पूरा होने पर कार्यपालिका से छूट मांगी जा सकती थी।

हालांकि, पिछले कुछ वर्षों से न्यायपालिका ने आजीवन कारावास की व्याख्या एक अपराधी के प्राकृतिक जीवन के अंत के रूप में की है। अदालतों ने माना

है कि 14 साल की अवधि, मौत की सजा के अनुरूप नहीं है और इसलिए इसे दोषी के शेष प्राकृतिक जीवन के लिए आजीवन कारावास से बदला जाना चाहिए, जिसमें 'रेमिटेंस' की कोई गुंजाइश नहीं है। सन् 2015 में भारत सरकार बनाम वी श्रीहरन /मुरुगन मामले में सुप्रीम कोर्ट के एक फैसले में इस स्थिति को जोर देकर कहा गया था। न्यायालय ने यह सुनिश्चित किया कि आजीवन कारावास सुनाते वक्त अपीलीय अदालतों के पास सीआरपीसी के तहत सरकारों की माफ़ी देने की शक्तियों को सीमित करने का अधिकार है, और किसी भी कैदी को छूट का दावा करने का मौलिक अधिकार नहीं है। इसे आपराधिक न्याय प्रणाली के सुधार और पुनर्वास के लक्ष्य के संबंध में कैसे देखा जाए? यदि न्यायपालिका मृत्युदंड को आजीवन कारावास में बदलकर जीवन के अधिकार को बनाए रखने का दावा करती है, तो भारत में जेलों की स्थिति को देखते हुए, क्या अंतहीन कारावास एक मानवीय परिणाम है? क्या अंतहीन कारावास सुधार सुनिश्चित कर सकता है?

पेरारिवलन मामले में जहाँ राज्य सरकार ने उन्हें रिहा करने की मांग की थी, केंद्र सरकार ने उसके फैसले का विरोध किया। सर्वोच्च न्यायालय ने राज्य सरकार के पक्ष में संघीय शक्तियों के मुद्दे का समाधान किया। रिहाई उन कैदियों को उम्मीद देती है जो माफ़ी की उम्मीद के बिना उम्रकैद की सजा काट रहे हैं, ख़ासकर आतंकवाद से संबंधित मामलों में, जहाँ साक्ष्य अक्सर लचर होता है, उचित प्रक्रिया के सामान्य सुरक्षा उपाय बहुत कमजोर हैं, और सबूत का भार अभियोजन के पक्ष में रहता है, जैसा कि पेरारिवलन मामले में बाद के घटनाक्रमों से स्पष्ट था।

आईपीएस अधिकारी वी त्यागराजन, जिन्होंने पेरारीवलन के 'कबूलनामे' को दर्ज किया था, ने बाद के वर्षों में खुलासा किया कि उन्होंने गवाही के कुछ हिस्सों को छोड़ दिया था, जिससे यह स्पष्ट होता था कि यह एक कंफ़ेशन नहीं था। सर्वोच्च न्यायालय की पीठ की अध्यक्षता करने वाले न्यायमूर्ति के.टी. थॉमस ने कहा कि अभियुक्तों के बयानों को पुष्टिकारक साक्ष्य की बजाय ठोस सबूत के रूप में इस्तेमाल किया गया क्योंकि मामलों की सुनवाई आतंकवाद विरोधी कानूनों के तहत की जा रही थी।

पेरारिवलन को रिहा करने के अपने फैसले को बरकरार रखते हुए अदालत ने क़ैद की अवधि, जेल में और ज़मानत पर बाहर रहने के दौरान दोषी के अच्छे व्यवहार और प्रायश्चित के उसके प्रयासों का हवाला दिया। हालांकि क्या यह तर्क सभी मामलों पर लागू किया गया? सन् 2021 में कम्यूटेशन के तीन मामलों में, सुप्रीम कोर्ट ने तीन व्यक्तियों को 30 साल की निश्चित अवधि के लिए आजीवन कारावास का आदेश दिया। एक मामले में, बलात्कार के साथ हत्या का आरोप शामिल था (इरप्पा सिद्दप्पा मुर्गनवर बनाम कर्नाटक राज्य आपराधिक अपील संख्या 1473–1474) 2017) और दो अन्य मामलों में, अपने ही परिवार के कई सदस्यों की हत्या शामिल थी (मोफिल खान और अन्य बनाम झारखंड राज्य समीक्षा याचिका (आपराधिक) संख्या 641/2015 और भागचंद्र बनाम मध्य प्रदेश राज्य आपराधिक अपील संख्या 255– 2018 का 256)। इन तीनों मामलों में, अदालत ने पाया कि दोषियों में सुधार की संभावना थी फिर भी अपराधों की 'जघन्य' प्रकृति के कारण, उन्हें बिना किसी माफ़ी के 30 साल की सजा सुनाई गई। इसी तरह से, 1992 के बारा नरसंहार की सुनवाई, दो दशकों तक चली जिसमें दो अलग–अलग टाडा अदालतें और दो अलग–अलग सुप्रीम कोर्ट बेंच

3 नवंबर को सुप्रीम कोर्ट ने दिसंबर 2000 के लाल किले पर हमले के मामले में दोषी मोहम्मद आरिफ के लिए मौत की सजा को बरकरार रखा। सुप्रीम कोर्ट द्वारा मृत्यु दंड की पुष्टि करना, 2005 में सत्र अदालत द्वारा मौत की सजा दिए जाने से लगातार शुरू हुए अपील और समीक्षा की जटिल न्यायिक प्रक्रिया को समाप्त करता है। समीक्षा याचिका को खारिज करते हुए सुप्रीम कोर्ट की तीन सदस्यीय पीठ ने तर्क दिया कि एक विदेशी द्वारा आतंकी हमला सबसे गंभीर अपराध है। मृत्युदंड की पुष्टि ऐसे समय में हुई है जब न्यायिक कार्यकाल मृत्युदंड के प्रतिस्थापन के रूप में लंबे आजीवन कारावास के पक्ष में रहा है, और इस साल अदालतों ने राजीव गांधी की हत्या के मामले में दोषियों पेरारीवलन और नलिनी की रिहाई का आदेश भी में दिया है। लेकिन आरिफ के मामले में, अदालत ने आरोपी की पहचान पर आधारित "आतंकी अपराध" की जघन्यता के लिए सजा के रूप में मौत की सजा देने का फैसला किया है। पीयूडीआर ने इन घटनाओं के जरिये न्यायिक तर्कों में दरारों को अपनी स्टेटमेंट के माध्यम से अनुभव किया और उसके आधार पर मृत्युदंड को कारावास में बदलने की मांग की।

शामिल थीं। कुल मिलाकर, सर्वोच्च अदालत ने 2002 में चार (कृष्णा मोची, वीर कुवंर पासवान, नन्हे लाल मोची और धर्मेंद्र सिंह) के लिए मृत्युदंड की पुष्टि की और 2013 में, दो को आजीवन कारावास (बगुल मोची और व्यास कहार) में बदल दिया । पीयूडीआर की रिपोर्ट संदिग्ध 'निष्पक्ष' मुकदमे का विश्लेशण करती है, जो सिलसिलेवार ढंग से अभियोजन पक्ष के बचाव में एकत्र किये गए सबूतों में प्रक्रियात्मक खामियां, चूक और ढील पर आधारित थी। सन् 2017 में, राष्ट्रपति ने चार मृत्युदंडों को आजीवन कारावास में बदल दिया बिना यह स्पष्ट किये हुए कि आजीवन कारावास की अवधि क्या होगी । इन चार दोषियों में से दो ने 25 साल की सज़ा काट ली थी और शेष दो ने क्रमशः 19 और 18 साल की सजा काट ली थी हालाँकि आजीवन कारावास देते हुए इस बात पर गौर नहीं किया गया। यह तर्क देते हुए कि प्राकृतिक जीवन के अंत तक कारावास क्रूर और उद्देश्यहीन है, पीयूडीआर ने अधिकारियों से माफी की कई अपीलें दायर कीं, जिन्हें नज़रंदाज़ कर दिया गया।

बिलकिस बानो मामले में कैदियों के लिए परिस्थितियाँ मौलिक रूप से भिन्न हैं। जबकि 11 ने 14 साल की न्यूनतम सजा पूरी कर ली थी, उनमें से चार जो पैरोल पर बाहर आये थे उन पर गवाहों को धमकाने की शिकायतें थीं और दोषियों में से एक पर आईपीसी की धारा 354, 504, 506 के तहत आरोप भी लगाया गया था। जिन अपराधों के तहत उन्हें दोषी ठहराया गया है, उनकी प्रकृति देखते हुए ये अपराधी, राज्य सरकार की 2014 में तैयार की गयी नीतियों के तहत पैरोल के हकदार नहीं थे (इस नीति में बलात्कार और हत्या के दोषियों को शामिल नहीं किया गया था)। हालाँकि दोषियों को 1992 की नीति के आधार पर माफ़ कर दिया गया, जो सज़ा सुनाए जाने के वक़्त प्रभावी थी। केंद्र सरकार द्वारा दोषियों को रिहा करने के फैसले के पीछे का तर्क ना तो सार्वजनिक है ना पारदर्शी। समिति के एक सदस्य द्वारा अभियुक्तों की उच्च जाति के बारे में की गई सार्वजनिक टिप्पणियां निर्णय लेने की एक समस्याग्रस्त प्रक्रिया की ओर इशारा करती हैं। बाद में आरएसएस के एक सदस्य द्वारा रिहा किए गए दोषियों की प्रशंसा उनकी रिहाई के राजनीतिकरण की ओर इशारा करती है (पीयूडीआर स्टेटमेंट देखें)।

समानता सुनिश्चित करने वाली पारदर्शिता के सिद्धांत पर न्याय प्रणाली आधारित होने के बावजूद माफ़ी की प्रणाली अपारदर्शी क्यों रहती है? आख़िर ऐसा क्या

है जो एक अपराधी को अंतहीन कारावास और दूसरे को न्यूनतम कारावास देता है? क्या यह सही समय नहीं है कि इन व्यवस्थाओं की समीक्षा की जाए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि वे अपारदर्शी और मनमानी ना हों और उनका राजनीतिकरण होने से रोका जा सकता है?

आफ़स्पा

आफ़स्पा को असम, मणिपुर, नागालैंड और अरुणाचल प्रदेश के कई जिलों में लागू कर दिया गया है। अप्रैल में अशांत क्षेत्रों की सूची से कुछ क्षेत्रों को हटा दिये जाने के बाद, कोई भी राज्य आफ़स्पा द्वारा पूरी तरह कवर नहीं होता है। असम का एक बड़ा हिस्सा अशांत क्षेत्रों की सूची से हटा दिया गया है और असम के मुख्यमंत्री ने हाल ही में कहा कि राज्य इसे कछार जिले के लखीपुर और पूरे कार्बी आंगलोंग जिले से वापस लेने पर विचार कर रही है। असम और मणिपुर के अधिकारियों को यह कहते हुए उद्धृत किया गया कि नागालैंड से सटे राज्य के क्षेत्रों में आफ़स्पा लागू है। असम के विशेष पुलिस महानिदेशक ने यह भी खुलासा किया है कि लद्दाख में फिर से तैनाती के कारण राज्य में सैनिकों की संख्या घट गई थी।

केंद्रीय गृह मंत्री अमित शाह ने कहा कि सरकार का लक्ष्य पूर्वोत्तर में अंतर सीमा विवादों को सुलझाना और 2024 से पहले क्षेत्र के सभी सशस्त्र विद्रोही समूहों के साथ समझौता करना है। हालांकि, उन्होंने यह भी जोड़ा कि आफ़स्पा को तभी हटाया जाएगा जब सरकार समूचे उत्तर–पूर्व में शांति स्थापित करने मे सफल होगी।

नागा पीपुल्स फ्रंट सहित नागा समूहों ने नागालैंड में आफ़स्पा के विस्तार का विरोध किया है (आफ़स्पा पर अधिक जानकारी के लिए पीयूडीआर का मार्च 2022 का न्यूज़लेटर देखें)।

भीमा कोरेगांव, एनआईए और यूएपीए

बॉम्बे हाई कोर्ट ने एक महत्वपूर्ण फैसले में एल्गर परिषद/भीमा कोरेगांव मामले के आरोपी आनंद तेलतुंबडे को सबूतों के अभाव में जमानत दे दी है। दिनांक 25 नवंबर को राष्ट्रीय जांच एजेंसी (एनआईए) द्वारा चुनौती को खारिज करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने जमानत आदेश को बरकरार रखा।

दिनांक 18 नवंबर को अपने ज़मानत आदेश में, बॉम्बे हाईकोर्ट ने कहा, "वर्तमान मामले में आपत्तिजनक सामग्री की जब्ती किसी भी तरह से प्रथम दृष्टया यह निष्कर्श नहीं निकालता कि अपीलकर्ता ने यूएपी अधिनियम की धारा 15 के तहत 'आतंकवादी गतिविधि' माना जाने वाला अपराध किया है या वह इसमें शामिल है।" एनआईए ने प्रस्तुत किया था कि प्रथम दृश्टया इन दस्तावेजों के पढ़ने से पता चलता है कि अपीलकर्ता सीपीआई (माओवादी) का एक सक्रिय सदस्य है और राज्य के विरुद्ध इसकी विचारधारा को आगे बढ़ाने की गतिविधियों में शामिल रहा है। जवाब में, अदालत ने कहा कि सह–आरोपी रोना विल्सन के लैपटॉप से कथित रूप से बरामद पांच पत्र और आनंद तेलतुंबडे के खिलाफ सबूत के रूप में उद्धृत, "अनुमान के दायरे" में आते हैं, जिनकी "पुष्टि" होना अभी बाक़ी है। स्मरण रहे कि रोना विल्सन के लैपटॉप से ज़ब्त सामग्री भी विवादित है। मैसाचुसेट्स स्थित डिजिटल फोरेंसिक फर्म, आर्सेनल कंसल्टिंग की एक रिपोर्ट के अनुसार, पत्र एक हैकर द्वारा लैपटॉप में डाले गए थे। इन्हीं पत्रों की बिनाह पर आरोपी के खिलाफ मामला दर्ज है।

एनआईए द्वारा उच्च न्यायालय के फैसले की चुनौती को खारिज करते हुए, सुप्रीम कोर्ट की पीठ ने यह दर्ज किया कि आईआईटी मद्रास के एक कार्यक्रम में तेलतुंबडे की भागीदारी दलित लामबंदी के लिए थी। पीठ ने पूछा, "क्या दलित लामबंदी, एक निषिद्ध गतिविधि है?" न्यायालय ने, हालांकि, कहा कि उच्च न्यायालय की टिप्पणियों को मुक़दमे के समय अंतिम निष्कर्ष नहीं माना जाएगा। अदालत ने यह भी नोट किया कि भीमा कोरेगांव के कारण एक व्यक्ति की मौत हुई। हालांकि, आरोपों और चार्जशीट के मसौदे के आधार पर अदालत ने कहा, "हमें प्रथम दृष्टया पता है कि एनआईए ने इस मुत्तालिक कोई जांच नहीं की है।" अदालत का आदेश उन मुद्दों की ओर इशारा करता है जिन्हें मानव अधिकार कार्यकर्ता और मानव और जनतांत्रिक अधिकार संगठन, यूएपीए के बारे में उठाते रहे हैं। यह कानून अपराध के अनुमान को, अपराध के साक्ष्य की आवश्यकता से अधिक बल देता है। जमानत पर कठोर प्रतिबन्ध के परिणामस्वरुप आरोपियों को लंबे समय तक कैद रखा जा सकता है। इस तरह प्रक्रिया ही सजा बन जाती है। चाहे अंत में आरोपी दोशी पाया जाए या निर्दोष निकले । यूएपीए के मामलों में सजा की कम दर भी, इस तर्क को मज़बूत बनती है।

पीपुल्स यूनियन फ़ॉर सिविल लिबर्टीज़ (PUCL) द्वारा चलाए 'यूएपीए हटाओ' अभियान के तहत निकाली गयी हालिया रिपोर्ट " यूएपीए (UAPA): क्रिमिनलाइज़िंग डिसेंट एंड स्टेट टेरर" की एक झलक स्पष्ट करती है कि कैसे इस कठोर कानून का उपयोग किया जा रहा है। एनआईए की वेबसाइट पर दी गई सार्वजनिक सूचना, राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो द्वारा जारी 'भारत में अपराध' रिपोर्ट और संसद में उठाए गए सवालों के जवाब के आधार पर, यह पीयूसीएल रिपोर्ट यूएपीए दुरुपयोग के व्यापक पैटर्न पर प्रकाश डालती है।

जहाँ यह माना जाता है कि यूएपीए का इस्तेमाल गंभीर अपराधों के लिए है, इसमें सजा की दर बहुत कम है। एनसीआरबी के आंकड़ों के आधार पर, रिपोर्ट में कहा गया है कि 2015 और 2020 के बीच यूएपीए के तहत मामलों की सजा दर भारतीय दंड संहिता के तहत संज्ञेय अपराधों में 49.67 प्रतिशत की तुलना में 27.57 प्रतिशत थी। गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों की संख्या के आधार पर गणना की गई सजा की दर केवल 2.80 प्रतिशत है। पीयूसीएल की रिपोर्ट बताती है कि अधिकांश अभियोग "... बिना सिर–पैर के हैं और यूएपीए तो दूर, किसी भी क़िस्म के अभियोजन की शुरुआत दरकार नहीं करते हैं।"

लेकिन ज़मानत की कड़ी शर्तों के कारण, लोग गलत तरीके से फंसाए जाने के बावजूद भी मुकदमे के दौरान जेल में सड़ते रहते हैं। मिसाल के तौर पर, रिपोर्ट में बताया गया कि वर्ष 2020 में गिरफ्तार किए गए लोगों की कुल संख्या, यानी 1,321 में से केवल 16.8 प्रतिशत को ही जमानत मिली।

एनआईए द्वारा जांच किए गए मामलों में धारा 18 (षड्यंत्र के लिए सजा, आदि) का व्यापक उपयोग दिखता है, जिसे एनआईए द्वारा चलाए गए 357 मामलों में से 238 में लागू किया गया था। 152 या 64 प्रतिशत मामलों में कोई घटना नहीं दिखाई गई। लोग पुलिस के बेसिरपैर के दावों के आधार पर जेल में सड़ रहे हैं। बिना मुकदमे के हिरासत में लेना कानून का वास्तविक उद्देश्य बन गया है। पीयूडीआर ने लगातार इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित किया है कि 'प्रक्रिया ही सजा है', जैसा कि पीयूडीआर सदस्य गौतम नवलखा की कैद से साफ़ है। नवलखा को बम्बई हाई कोर्ट द्वारा 'हाउस अरेस्ट' तो दिया गया था, लेकिन इसकी शर्तें बेहद कड़ी थी । एनआईए ने हाउस अरेस्ट का पुरजोर विरोध किया।

नवलखा को 2018 में गिरफ्तार किया गया और 2020 में तलोजा जेल भेज दिया गया। इस केस में अभी तक आरोप पत्र दाख़लि नहीं किया गया है। तलोजा जेल में कैद के दौरान नवलखा को चश्मा, मच्छरदानी और यहां तक कि पी. जी. वुडहाउस का उपन्यास पहुँचाये जाने तक का, राष्ट्रीय सुरक्षा के आधार पर, विरोध किया गया। भीमा कोरेगांव मामले के एक अन्य आरोपी, 84–वर्षीय फादर स्टेन स्वामी की, उपचार के लिए रिहाई के उनके अनुरोध को ठुकरा दिए जाने के बाद, जेल में ही मृत्यु हो गई। पीयूडीआर ने फादर स्टैन स्वामी के कारवास और मृत्यु पर एक रिपोर्ट प्रकाशित की थी, और, एल्गर परिषद मामले में एनआईए की बढ़ती भूमिका पर भी ध्यान आकर्षित किया था। हालिया पीयूसीएल की रिपोर्ट में कहा गया है कि एनआईए द्वारा जांच किए गए अधिकांश यूएपीए मामले, यानी कुल 88 प्रतिशत अक्सर राज्य सरकार की सहमति के बिना विभिन्न राज्य जांच एजेंसियों से लिए गए हैं, जैसे भीमा कोरेगांव का केस। पीयूसीएल के अनुसार एनआईए द्वारा लिए गए कुछ मामलों का राष्ट्रीय सुरक्षा से कोई लेना–देना नहीं है। जैसे कि तमिलनाडु में एक व्यक्ति द्वारा एक फेसबुक पोस्ट के माध्यम से यह टिप्पणी करने पर कि 'क्या भारत को स्वतंत्रता वास्तव में केवल इसलिए मिली थी कि स्वतंत्रता दिवस मनाया जा सके', उस पर यूएपीए लगा दिया गया।

एनआईए को और विस्तारित करने की दिशा में, सरकार ने अब कई राज्य सरकारों के विरोध के बावजूद 2024 तक हर राज्य में राश्ट्रीय जांच एजेंसी के कार्यालय खोलने की घोषणा कर दी है। वर्ष 2019 में, फास्ट–ट्रैक विधानों की एक श्रृंखला के बीच, केंद्र सरकार ने एनआईए अधिनियम में भी संशोधन किया। पीयूडीआर ने तब इंगित किया था कि कैसे 2019 के संशोधन ने राज्य पुलिस पर एनआईए की शक्तियों को बढ़ा दिया है। एनआईए का दायरा, जो उस समय तक यूएपीए और परमाणु ऊर्जा अधिनियम के तहत अपराधों तक सीमित था, का विस्तार करते हुए अब इसमें मानव तस्करी, नकली मुद्रा, प्रतिबंधित हथियारों के निर्माण या बिक्री, 'साइबर आतंकवाद और विस्फोटक पदार्थ अधिनियम, 1908 के तहत आने वाले अपराधों से संबंधित अपराधों को शामिल कर दिया गया।

राज्य के अधिकार क्षेत्र के तहत मामलों पर केंद्रीय नियंत्रण को और मजबूत करने के लिए हर राज्य में एनआईए कार्यालय खोलने का कदम, केंद्र सरकार की एजेंसियों चाहे सीबीआई, ईडी या खुद एनआईए द्वारा चुनिंदा तौर पर लक्षित

और राजनीतिक लाभ उठाने के लिए देश भर में छापे मारने के मद्देनजर आता है। एनआईए के वर्तमान में 12 क्षेत्रीय कार्यालय हैंः हैदराबाद, गुवाहाटी, कोच्चि, लखनऊ, मुंबई, कोलकाता, रायपुर, जम्मू, चंडीगढ़, रांची, चेन्नई और इंफाल।

जो घंटियां बजती हैं, उन्हें बजाओ
अपनी शुभ भेंट को भूल जाओ
हर चीज़ में दरार है, तोड़ है
रोशनी इसी से तो अंदर आती है
– लियोनार्ड कोहेन